THE TIMES OF INDIA

Date: 19-08-24

It's safe to say

That every case of ssaulted woman ais a blow against women's workforce participation

Editorials

There is no possible road to India's prosperity, which doesn't run through it becoming a gender fair society. Everyone doesn't need to march to "reclaim the night". But everyone does need to understand the costs of continued indifference to the security needs of women. As IMF's Gita Gopinath indicated this weekend, India's economic aspirations can't be met without lifting its women's labour force participation, which in turn depends on actively ensuring women's safety.

It is bad enough that the women's labour force participation rate in India is about half of, say, Vietnam. What's much worse is how few Indian women are actually getting paid. A 2023 Azim Premji University report, for example, suggests that only about 17% of urban women are in the paid workforce. Rural women are much worse off. This amounts to women being caught in a vicious cycle. Their unpaid work, be it domestic or agricultural or in family enterprises, has low status. Seeking paid work, or higher education to enable it, is discouraged on account of various factors, very high among which is lack of safety.

Efforts to ensure their safety often, ironically, involve putting them in a cage. There's a maze of laws and regulations to curb whether they can work at night or in jobs deemed hazardous or arduous or morally inappropriate. These also end up curbing women's ability to rise up the ladder. Becoming a top manager means overcoming all the impediments, and also, as Gopinath indicated too, the countless suggestions to just chill, which men just don't have to contend with. We have no way of knowing how many chains and hurdles the doctor raped and murdered at a Kolkata medical college and hospital on Aug 9, had to break through to be on night duty. But we know that in the press conference that day, her principal said she had been "irresponsible" to go to the seminar hall alone at night. The thing that women know about staying in a cage, though, is that it only gets more and more oppressive, and has a safety rating of zero.

This is a complex social problem, no doubt. But there's no solving it without tough deterrence. CCTVs are everywhere in our cities now. Everyday, police must publicise how it has used these to catch a sexual assailant. Stop telling women where not to go. Start making more transports and destinations assault-free. By swiftly punishing the men who commit the assaults.

Date: 19-08-24

Think laterally

Reservations shouldn't be applicable when recruiting outside talent for short stints in govt

Editorials

Opposition parties have charged that GOI's advertisement for 45 lateral entry posts in the bureaucracy is unmindful of reservation provisions. Jobs advertised include those of joint secretary, director, and deputy secretary in 24 ministries of the central govt. But if the idea here is to recruit talent from outside the civil services system and tap domain expertise, reservations for lateral recruitment make little sense.

Enhancing merit | The whole purpose of lateral recruitment is to try and make the bureaucratic system more efficient. Specifically,lateral recruits are expected to deliver on specific projects and achieve faster implementation of fresh ideas. The purpose of affirmative action is to bypass structural social barriers to opportunities. Thus, the objectives are vastly different. Note that lateral entry posts are temporary in nature, lasting three to five years. Lateral recruitment should, therefore, focus on only getting the best expertise for the job, irrespective of the social background of the candidate.

Global experience | Lateral entry in govt isn't a new idea. In US, a special govt employee category was created by Congress in 1962 to allow the federal govt to take advantage of outside experts. From 2005 to 2014, an average of 2,000 such employees worked every year for various US govt departments. Similarly, Britain has had the system of special advisers assisting ministers for decades.

Keep politics out | It's also the opposition's case that lateral entrants may be biased towards the party in govt. But this also holds true for regular, senior bureaucratic appointments, in Centre and in states. Calibre ought to be the only criteria for lateral entrants since they will serve very specific functions for a limited period. For the sake of a nimble bureaucracy, let's not politicise the idea.

दैनिक जागरण

Date: 19-08-24

व्यापक लाभ वाला पूंजीगत खर्च

विवेक देवराय और आदित्य सिन्हा, (देवराय प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के प्रमुख और सिन्हा परिषद में ओएसडी-अनुसंधान हैं)

कोविड महामारी के बाद और इस समय जारी भू-राजनीतिक उथलपुथल के दौर में जहां दुनिया के तमाम हिस्से पुरानी आर्थिक तेजी हासिल करने के लिए संघर्षरत हैं, वहीं भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार के संकेत स्पष्ट दिखते हैं। देश में उपभोग का स्तर भी बढ़ा है। इसके बावजूद कुछ आर्थिक दबाव अब भी कायम हैं, जैसे कि निर्यात का मोर्चा, जो व्यापक रूप से बाहरी वैश्विक परिदृश्य पर निर्भर करता है।ऐसे में वृद्धि को गति देने के लिए सरकारी व्यय की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। सरकारी व्यय को भी मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक होता है चालू व्यय, जिसमें वेतन और सब्सिडी जैसे सामान्य एवं परिचालन लागतों से जुड़े खर्चे शामिल होते हैं। दूसरा होता है पूंजीगत व्यय जिसे कैपेक्स भी कहते हैं। इसमें बुनियादी ढांचे का निर्माण जैसी ऐसी परिसंपत्तियों का निर्माण होता है, जो लंबे समय तक उपयोग में लाई जाती हैं।इसमें वित्तीय हस्तांतरण के माध्यम से कल्याणकारी कार्यक्रमों के रूप में धन का पुनर्वितरण होता है। वस्तुओं और सेवाओं की लागत को नियंत्रण में रखने के लिए सब्सिडी दी जाती है और सार्वजनिक निवेश बढ़ाया जाता है। इसके अंतर्गत शोध, विकास एवं लोक उपक्रमों पर खर्च किया जाता है। अपनी उत्पादक प्रकृति के चलते पूंजीगत व्यय जीडीपी वृद्धि पर व्यापक प्रभाव डालता है। यह न केवल सड़क, स्कूल और कारखानों के निर्माण जैसी परियोजनाओं के माध्यम से तात्कालिक मांग को प्रोत्साहन देता है, बल्कि आर्थिकी की उत्पादन क्षमताओं में वृद्धि के जरिये दीर्घकालिक आर्थिक विस्तार की आधारशिला रखता है।

प्रश्न उठता है कि पूंजीगत व्यय अन्य खर्चों से कैसे बेहतर है? इसे मल्टीप्लायर इफेक्ट यानी गुणक प्रभाव की अवधारणा से समझा जा सकता है। इस प्रकार के खर्च में सरकार द्वारा आरंभिक स्तर पर जो राशि खर्च की जाती है वह अर्थव्यवस्था पर चक्रीय प्रभाव दिखाकर उसर्जित होती है। इस आय से कुछ लोग वस्तु और सेवाओं का उपभोग करेंगे तो कारोबारी अपने व्यवसाय में पुन: निवेश करेंगे। इस पैसे से जो कारोबार सृजित होगा, उससे अन्य लोगों के लिए भी रोजगार सृजित होंगे। यह प्रक्रिया चलती रहती है और हर एक चरण के साथ सरकार के आरंभिक निवेश में चक्रीय प्रभाव उत्पन्न होता रहता है। वस्तुत: गुणक प्रभाव से यही आशय है कि इसमें सरकारी खर्च केवल परियोजना में प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय लोगों तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु यह आर्थिकी के विभिन्न स्तंभों पर असर डालते हुए समग्र आर्थिक वृद्धि को संबल प्रदान करता है।

संभव है कि सभी के एक बड़े हिस्से को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। जैसे सरकार किसी हाईवे के निर्माण पर जो खर्च करती है, उससे कंस्ट्रक्शन में आपूर्तिकर्ताओं से लेकर कामगारों के लिए अवसर बनते हैं। उन्हें आय अ प्रकार के सरकारी व्यय इस प्रकार का प्रभाव न उत्पन्न न कर पाएं। सुकन्या बोस और एनआर भानुमूर्ति के एक शोध के अनुसार पूंजीगत परियोजनाओं (बुनियादी ढांचे जैसी) पर खर्च अन्य प्रकार के खर्चों की तुलना में कहीं व्यापक प्रभाव डालता है।ऐसी परियोजनाओं पर सरकार जो एक रुपया खर्च करती है वह 2.45 रुपये के खर्च जितना प्रभाव उत्पन्न करता है। इसके उलट, सरकार नकदी हस्तांतरण (कल्याण और पेंशन) और सामान्य व्यय (जैसे कि वेतन) पर जो एक रुपया खर्च करती है, उसका प्रभाव 0.98 से 0.99 रुपये के बराबर पड़ता है। यानी अपने मूल के जितना भी नहीं।इससे स्पष्ट है कि पूंजीगत परियोजनाओं पर खर्च न केवल तात्कालिक तौर पर अर्थव्यवस्था की गति बढ़ाता है, बल्कि बुनियादी ढांचे में सुधार, उत्पादकता में बढ़ोतरी और भावी आर्थिक गतिविधियों को आधार प्रदान कर दीर्घकालिक वृद्धि की ठोस बुनियाद भी रखता है।सीधे शब्दों में कहें तो सरकार सड़क, स्कूल या अस्पताल जैसी परियोजनाओं पर जो खर्च करती है, उससे न केवल वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, बल्कि भविष्य के लिए भी अवसरों का सृजन होता है। यह निवेश लोगों के जीवन को सुविधाजनक बनाता है। कारोबार को सुगम बनाता है। रोजगार बढ़ाता है। इससे दीर्घकाल में एक सशक्त अर्थव्यवस्था की राह तैयार होती है।

वित्त वर्ष 2024-25 के बजट में सरकार ने पूंजीगत व्यय के लिए 11.1 लाख करोड़ रुपये का प्रविधान किया है। यह जीडीपी के 3.4 प्रतिशत के बराबर आवंटन है। इसमें पिछले वर्ष की तुलना में 17.1 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। यह बढ़ोतरी बुनियादी ढांचा विकास एवं दीर्घकालिक आर्थिक वृद्धि के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता को भी रेखांकित करती है। हाल के वर्षों में सरकारी निवेश के दम पर ही बुनियादी ढांचे के विकास ने गति पकड़ी है।वर्ष 2019 से 2023 के बीच इस मोर्चे पर हुआ 49 प्रतिशत निवेश सरकार द्वारा किया गया। पिछले एक दशक के दौरान देश में बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे का विकास हुआ है। इनमें अत्याधुनिक रेलवे स्टेशन, एयरपोर्ट और बंदरगाह और हाईवे से लेकर ब्राडबैंड कनेक्टिविटी जैसे प्रमुख काम गिनाए जा सकते हैं।

सुनिश्चित किया जा रहा है कि दुर्गम इलाकों में भी स्कूल और अस्पताल जैसी सुविधाएं पहुंचें। आयुष्मान भारतयोजना के जरिये किफायती स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं। दूरदराज के क्षेत्रों में भी आधुनिक अस्पताल और आरोग्य मंदिर स्थापित किए जा रहे हैं। तमाम मेडिकल कालेज और अस्पताल निर्माण की प्रक्रिया में हैं।करीब 60,000 तालाबों का पुनरुद्धार किया गया है तो दो लाख पंचायतों को आप्टिकल फाइबर नेटवर्क से जोड़ा गया है। नहरों का फैलता जाल भी किसानों को लाभ पहुंचा रहा है। इसके साथ ही चार करोड़ पक्के मकानों का निर्माण हाशिए पर रहने वाले लोगों को मुख्यधारा से जोड़ने में सेतु की भूमिका निभा रहा है।इसी कड़ी में तीन करोड़ और मकानों के निर्माण की भी बात है। सरकार का यह दृष्टिकोण प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की उसी संकल्पना के अनुरूप है, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वतंत्रता दिवस पर अपने संबोधन में'ईज ऑफ लिविंग' यानी जीवन की सुगमता के रूप में किया।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 19-08-24

पड़ोसी का सम्मान होगी सही रणनीति

शेखर गुप्ता

बांग्लादेश के घटनाक्रम ने एक बार फिर भारत के पड़ोस को सुर्खियों में ला दिया है। साथ ही ऐसी स्थितियों से निपटने के मोदी सरकार के रिकॉर्ड पर भी सबकी नजर है। आज के हालात पर गहराई से नजर डालने के लिए हमें चौथाई सदी पहले जाना होगा, जब अटल बिहारी वाजपेयी ने लाहौर की बस यात्रा कर पाकिस्तान के साथ रिश्ते सुधारने की बड़ी पहल की थी। उन्होंने कहा था कि हम अपने मित्र चुन सकते हैं लेकिन पड़ोसी नहीं।वर्ष 2008 में मनमोहन सिंह ने एक कदम आगे बढ़ाया और 'पड़ोसी प्रथम' का नारा दिया। 2014 में नरेंद्र मोदी ने भी इस पर मुहर लगाई और अपने शपथ ग्रहण समारोह में भारतीय उपमहाद्वीप के सभी देशों के नेताओं को आमंत्रित किया। इसके बाद उन्होंने पड़ोसी मुल्कों की यात्रा की। एक बार तो उनकी यात्रा बेहद नाटकीय रही, जब वह बिना किसी को बताए पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री नवाज शरीफ की पोती की शादी में मुबारकबाद देने लाहौर पहुंच गए।

उस समय उम्मीद जगी थी। 25 साल में पहली बार बहुमत की सरकार चला रहे देश का मुखिया अगर ऐसे सात संप्रभु देशों के बीच रिश्तों में सुधार के लिए इतना प्रतिबद्ध है, जिनके बीच कई मतभेद थे तो मतभेदों और टकरावों को दूर

कर सभी के बीच सेतु बनाना मुमकिन था। हालांकि इन देशों के बीच कुछ मतभेद विचारधारा के कारण थे, जो समय के साथ गहरे हो गए थे। शीतयुद्ध के दौर के पूर्वग्रह भी इनके बीच थे। इन समस्याओं से निजात पाकर राह बनाना बड़ी चुनौती थी, जिसके लिए मोदी आगे बढ़ रहे थे।

अब मोदी सरकार का तीसरा कार्यकाल चल रहा है तो देखना होगा कि उनका प्रदर्शन कैसा रहा है? बांग्लादेश अब तक के सबसे बड़े संकट से गुजर रहा है। बीते 15 सालों से बांग्लादेश भारत का सबसे करीबी सहयोगी रहा है। भारत के लिए सुरक्षित पूर्वोत्तर की धुरी ढाका में है क्योंकि म्यांमार में शक्ति का केंद्र कहां है, कोई नहीं जानता। इस बीच पाकिस्तान में नाटकीय बदलाव आए हैं। वहां नया सत्ता प्रतिष्ठान है और 5 अगस्त, 2019 को जम्मू कश्मीर में हुए बदलावों के बाद भारत के साथ उसके संबंध लगभग समाप्त हो चुके हैं।

नेपाल में अविश्वास इतना बढ़ चुका है कि उसने अपने राष्ट्रीय मानचित्र में बदलाव करके सामरिक महत्त्व के उस भारतीय भूभाग को अपना हिस्सा दिखा दिया, जहां से कैलास-मानसरोवर तीर्थ यात्रा का मार्ग गुजरता है। नेपाल की संसद में इस मानचित्र को सर्वसम्मति से मंजूरी भी मिल गई।

श्रीलंका में आर्थिक संकट के बाद एक अलग किस्म की क्रांति हुई। हंबनटोटा जैसे उसके प्रमुख बंदरगाह का चीन ने अधिग्रहण कर लिया। मालदीव में मोहम्मद मुइज्जू के उभार के पीछे 'भारत भगाओ' का नारा रहा और यह हाल ही की बात है। भूटान पर सीमा विवाद 'हल' करने का चीनी दबाव लगातार बना हुआ है और उससे कहा जा रहा है कि इसमें 'भारत के हितों की परवाह नहीं की जाए'।क्या यह नाटकीय और बदतर दौर पूरी तरह भारत की गलतियों का नतीजा है? या भारत पीड़ित है? मगर इतने रसूख वाला भारत पीड़ित होने का दावा कैसे कर सकता है? आज हमारा सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) शेष उपमहाद्वीप के कुल जीडीपी का चार गुना है। हमारी आबादी उनकी तीन गुना और वैश्विक शक्ति कई गुना है। भारत की जनता ने अपने गणतंत्र को पड़ोसी मुल्कों की तुलना में विशिष्ट बनाया है: एक संवैधानिक लोकतंत्र बनाया है, जहां सब कुछ लोकतांत्रिक, शांतिपूर्ण और विश्वसनीय तरीके से होता है। इसलिए पीड़ित होने की बात छोड़ ही दीजिए।दुनिया में सबसे अस्थिर पड़ोस हमारा ही है। ज्यादातर पड़ोसियों की आबादी बहुत अधिक है और शहरों में भीड़भाड़ है। उनकी आबादी में युवा ज्यादा हैं और अफ्रीकी देशों के उलट ज्यादातर ने लोकतंत्र को अपनाया है। बड़ी युवा आबादी और लोकतंत्र का अर्थ है कि जनता की राय मायने रखती है।

शेख हसीना और उनके मित्र के रूप में भारत ने बांग्लादेश में इसी बात की अनदेखी की। ये ऐसे देश नहीं हैं जहां कोई बेहद ताकतवर तानाशाह जनता की राय के खिलाफ जा सकता है। उनमें से हर एक देश का लोकतंत्र हमारी तुलना में अपूर्ण है लेकिन उनमें से किसी में पूरी तरह तानाशाही भी नहीं है। इन सभी देशों में आपको शासन और जनता के विचारों दोनों का ध्यान रखना होता है।

जनमत के लिए संप्रभुता भी मायने रखती है। अगर भारत दबाव बनाता नजर आएगा तो अच्छी प्रतिक्रिया नहीं होगी। हम नेपाल, मालदीव, श्रीलंका और बांग्लादेश में ऐसा होते देख चुके हैं। 2015 की नाकेबंदी ने गहरा जख्म दिया है। विदेश मंत्रालय यह जानता है और अक्सर सही बात कहता है। परंतु हमारा मीडिया खासकर सरकार के मित्रवत कहलाने वाले हिंदी समाचार चैनलों पर आने वाली खबरों पर गहरी नजर रखी जाती है। चरम राष्ट्रवादी सोशल मीडिया हैंडल उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हैं।कुछ हैंडल तो बांग्लादेश में सेना भेजने, वहां रहने वाले 1.4 करोड़ हिंदुओं के लिए सीमाएं खोल देने और रंगपुर में उनके लिए बस्ती बनाने की सलाह तक दे रहे हैं।

मालदीव के साथ बिगड़ रहे संबंध सुधारने के लिए वहां गए विदेश मंत्री एस जयशंकर जिस दिन लौटे उसी दिन अफवाह फैल गई कि मालदीव ने 28 द्वीप भारत को सौंप दिए। कुछ हिंदी चैनलों के प्राइम टाइम में इस पर बहस तक हो गई। किसी ने कह डाला कि 'मुइज्जु ने घुटने टेक दिए।' हमारे लिए यह मजाक हो सकता है, मालदीव के लोगों के लिए नहीं। करीब 50 लाख की आबादी और सात अरब डॉलर जीडीपी वाला वह देश भी हमारी तरह संप्रभु है।आखिर में विदेश मंत्रालय ने सभी ट्वीट डिलीट कराए मगर तब तक देर हो चुकी थी। खुद को उस पड़ोसी की जगह रखकर देखिए। वे यही सुनते समझते होंगे कि भारत बहुत दबंगई से काम करता है। दबंगई अच्छी है लेकिन मानसिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और बौद्धिक गुणों का क्या? स्वामी विवेकानंद ने शिकागो में कहा था विनम्रता के साथ क्षेत्र में शिक्षक बनना होगा। क्या हमारे शिक्षा संस्थान इतने अच्छे हैं कि वे पड़ोसी देशों के उन हजारों विद्यार्थियों को लुभा सकें, जो शिक्षा के लिए विदेशों में जाते हैं? क्या हम चाहते हैं कि वे आएं?चरम राष्ट्रवादी मीडिया द्वारा अपमान की जगह छात्रवृत्ति, इंटर्नशिप, सांस्कृतिक प्रदर्शन और फिल्में हों तो कैसा हो? इकलौती महाशक्तियों का इतिहास बताता है कि सॉफ्ट पावर असल में हार्ड पावर या असली ताकत की सहायक नहीं है बल्कि उसके लिए बहुत जरूरी है। क्या भारत में ऐसे थिंक टैंक हैं जो पड़ोसी देशों के विद्वानों को जगह दें, उन्हें सम्मेलनों के लिए बुलाएं, खुद की ट्रैक-2 प्रक्रिया चलाएं? ऐसा नहीं है कि भारत को यह सब पता नहीं है। इसीलिए हम नेपाल और भूटान से तो बिजली खरीदते हैं लेकिन बांग्लादेश को बिजली निर्यात करते हैं।

दूसरा पहलू है हिंदू कार्ड का जरूरत से अधिक प्रयोग। प्रधानमंत्री की नेपाल और बांग्लादेश यात्राओं के दौरान मंदिर भ्रमण को खास तौर पर प्रचारित किया गया। मगर हकीकत यह है कि हमारी सबसे लंबी सीमाएं मुस्लिम बहुल देशों के साथ मिलती हैं। जब हम उनसे कहते हैं कि अल्पसंख्यकों के साथ अच्छा व्यवहार करें तो वे हमारी ओर सवालिया ढंग से देखते हैं। यह गजब ही है कि जब बांग्लादेश उबल रहा है और हमारी कूटनीति हालात संभालने में लगी है ठीक उसी समय एक बांग्लादेशी हिंदू को असम में सीएए के तहत नागरिकता प्रदान की गई।

पांच वर्ष से और खासकर यूक्रेन युद्ध के शुरू होने के बाद से भारत बहुध्रुवीयता, सामरिक स्वायत्तता और बहु-संबद्धता की बात करता रहा है। मगर हमारे पड़ोसी भी इस पर चल सकते हैं। अगर हम चीन के खिलाफ अमेरिका का इस्तेमाल कर सकते हैं तो उन सभी के पास हमारे विरुद्ध चीन है।ताकतवर अमेरिका भी अपने पड़ोसी देश क्यूबा को नहीं झुका सका। वेनेजुएला को भी नहीं। पड़ोसियों के साथ हमारी नीति वही होनी चाहिए जो वाजपेयी ने बनाई, मनमोहन सिंहने अपनाई और जिसे मोदी ने ऊर्जा प्रदान की। हमें बस घरेलू राजनीति और अंध धार्मिकता से बचना होगा। साथ ही पड़ोसियों के प्रति अधिक नरमी दिखानी होगी और सम्मान बरतना होगा।

जनसत्ता

Date: 19-08-24

बाढ़ कुप्रबंधन

संपादकीय

वर्ष मानसून में बाढ़ से देश के अलग-अलग इलाकों में जैसी तबाही सामने आने लगी है, उसकी वजह नदियों में उफान और पानी का बेलगाम हो जाना है। अगर बाढ़ से बचाव के इंतजामों पर समय रहते ध्यान दिया जाए, तो इसकी वजह से जानमाल के व्यापक नुकसान से बचा जा सकता है। यह अफसोसनाक है कि जिन राज्यों में पिछले कुछ वर्षों में बाढ़ की वजह से व्यापक तबाही मची है, उनमें से कई राज्य सरकारों की चिंता में यह पक्ष शामिल नहीं रहा कि बाढ़ से होने वाले नुकसानों से बचाव के इंतजाम पहले ही कर लिए जाएं। नतीजतन, कई राज्यों में बरसात के मौसम में उफनने वाली नदियां भारी कहर ढाती हैं और व्यापक पैमाने पर जानमाल का नुकसान होता है। यों कुदरती आपदाओं से बचाव में लापरवाही को लेकर सरकारों के रुख पर अक्सर वाल उठते रहे हैं, अब जल शक्ति मंत्रालय की लोकलेखा समिति ने भी राज्यों के रवैये पर सवाल उठाया है। गौरतलब है कि जल शक्ति मंत्रालय की बाढ़ नियंत्रण एवं पूर्वानुमान के लिए योजनाओं की लोकलेखा समिति की एक रपट में पश्चिम बंगाल सहित आठ राज्यों में बाढ़ प्रबंधन कार्यों में दस से तेरह महीनों की देरी को लेकर सवाल उठाया गया है। समिति के मुताबिक, इस देरी की वजह से वास्तविक वित्तपोषण के समय तकनीकी डिजाइन अप्रासंगिक या अप्रचलित हो गए। इस प्रवृत्ति के नतीजे में योजनाओं की लागत में भी भारी इजाफा हो जाता है। यह हैरानी की बात है कि जब बाढ़ प्रभावित इलाकों में तबाही आती है, जानमाल का व्यापक नुकसान होता है, तब संबंधित राज्य सरकारें इसे प्राकृतिक आपदा बताती और इसके लिए वित्तीय सहायता की मांग करती हैं। मगर यह समझना मुश्किल नहीं है कि अगर बाढ़ प्रबंधन से जुड़े कार्यों में करीब एक वर्ष तक की देरी की जाती है, तो उसके नतीजे क्या होंगे। यह सही है कि बाढ़ एक प्राकृतिक आपदा है, लेकिन अगर इससे उपजने वाली समस्याओं के संदर्भ में जरूरी प्रबंधन समय पर सुनिश्चित किए जाएं तो नुकसान को काफी कम किया जा सकता है। मगर बाढ़ प्रबंधन के मामले में खुद राज्य सरकारें समयबद्धता का ध्यान न रखें तो नतीजों का अंदाजा लगाया जा सकता है।